एक्ज़िम बैंक स्थापना दिवस
वार्षिक व्याख्यान 2012

विश्व व्यापार प्रणाली में परिवर्तन : भारत के विकल्प

प्रो. जगदीश भगवती

EXIM BANK 30 YEARS 1982 - 2012

एक्ज़िम बैंक
EXIM BANK
भारतीय निर्यात-आयात बैंक
EXPORT-IMPORT BANK OF INDIA

एक्ज़िम बैंक
EXIM BANK
भारतीय निर्यात-आयात बैंक
EXPORT-IMPORT BANK OF INDIA

केन्द्र एक भवन, 21वीं मंज़िल, विश्व व्यापार केंद्र संकुल, कफ़ परेड, मुंबई-400 005.
फोन: (022) 2217 2600 । फैक्स : (022) 2218 2572। ई-मेल cag@eximbankindia.in । www.eximbankindia.in

जमशेदजी भाभा थिएटर,
नेशनल सेंटर फॉर दि परफॉर्मिंग आर्ट्स,
एन सी पी ए मार्ग, नरीमन पॉईंट
मुंबई 400 021 में
बुधवार, 21 नवंबर, 2012 को
आयोजित यह 27वां एक्ज़िम बैंक स्थापना दिवस
वार्षिक व्याख्यान है।

इस व्याख्यान को बैंक के होम पेज
www.eximbankindia.in पर भी देखा जा सकता है।

इस व्याख्यान का कोई भी अंश भारतीय एक्ज़िम बैंक की पूर्वानुमति
के बिना पुनर्प्रकाशित नहीं किया जा सकता।
इस व्याख्यान में व्यक्त किए गए विचार और निर्वचक लेखक के हैं और
वे भारतीय एक्ज़िम बैंक पर आरोप्य नहीं हैं।

एक्ज़िम बैंक
EXIM BANK
भारतीय निर्यात-आयात बैंक
EXPORT-IMPORT BANK OF INDIA

विश्व व्यापार प्रणाली में परिवर्तन : भारत के विकल्प

प्रो. जगदीश भगवती
प्रोफेसर ऑफ़ इकोनॉमिक्स, लॉ एण्ड इंटरनेशनल अफेयर्स
कोलम्बिया विश्वविद्यालय

विश्व व्यापार प्रणाली में परिवर्तनः भारत के विकल्प

प्रोफेसर जगदीश भगवती

विश्व व्यापार प्रणाली न केवल आज एक दोराहे पर खड़ी है बल्कि गलत राह पकड़ रही है। इन परिवर्तनों के आलोक में विश्व व्यापार के संबंध में भारतीय नीति सुविचारित और सुपरिभाषित होनी चाहिए: अन्यथा हमारी स्थिति ऐसी हो जाएगी कि हम विकास रूपी बस में सवार तो होंगें परंतु सबसे पीछे की सीट पर बैठे होंगे और इस बस की ड्राइविंग सीट पर ऐसे लोग होंगे जो अपने संकीर्ण राष्ट्रीय स्वार्थों के लिए बस को सही दिशा में नहीं चलने देंगे।

इस स्थिति का यदि कोई सर्वाधिक जिम्मेदार है तो वह है - ओबामा प्रशासन - जिससे न केवल मुझे बल्कि कई लोगों को बहुराष्ट्रीयता के संबंध में कई अपेक्षाएं थीं। किन्तु इसने अचानक विश्व व्यापार प्रणाली की गति पर विराम लगा दिया है - विशेषकर दोहा दौर की व्यापार वार्ताओं पर तो बिल्कुल ही। हमसे अच्छे तो मूर बोआब्डील थे, जिन्होंने 1492 में ग्रेनाडा में कैसाइल की केथॉलिक की रानी और राजा के सामने आत्मसमर्पण करते हुए आखिरी प्रयास तो किया था। किसी भी सरकार ने अमेरिका पर उंगली नहीं उठाई क्योंकि वह एक महाशक्ति है और उसकी ओर उंगली उठाने की किसी की भी हिम्मत नहीं है।

किंतु मुझ जैसे स्वतंत्र विचार रखने वाले शिक्षाविद् इसका विरोध करेंगें और उन्हें करना भी चाहिए। वस्तुत: ऐसा हम जैसे लोग ही कर सकते हैं क्योंकि हम अपनी आजीविका के लिए सरकार पर निर्भर नहीं हैं। सरकारों के सलाहकारों के रूप में कार्य करना (जैसा कि कोलम्बिया विश्वविद्यालय के हमारे कई सहयोगियों ने किया और यहाँ तक कि इथियोपिया के तानाशाह स्वर्गीय राष्ट्रपति मेलिस को कैंपस का गौरवपूर्ण दौरा भी करवाया जिसके चलते विश्वविद्यालय तथा इन भद्रजनों के खिलाफ कई प्रदर्शन भी हुए) वास्तव में हमारी आलोचक की भूमिका को कम करता है। यह कैसे हो सकता है कि आप उसी हाथ को काटें जिसे आपने अपने हाथ में पकड़ रखा है या आपने अभी कल ही उससे अपना भुगतान चेक प्राप्त किया है।

यदि आज के इस व्याख्यान में मैं स्वयं का संदर्भ लूं तो मेरे जीवन का वह सबसे गौरवपूर्ण भरा क्षण था जब गैट के महानिदेशक आर्थर डंकल ने 1991 में मेरे लिए गैट में आर्थिक नीति सलाहकार का पद सृजित किया था तब मैंने उनसे पूछा था कि क्या उन्होंने इस बारे में भारतीय अथवा अमेरिकी सरकार से अनुमति ली है? उन्होंने जवाब दिया था - दोनों में से किसी से भी नहीं, क्योंकि दोनों ही आपकी नियुक्ति का विरोध करेंगें। इसलिए आज मैं दोनों की समान रूप से आलोचना करूंगा। भारत का स्वयं का वैश्विक व्यापार रिकार्ड बहुत अच्छा नहीं रहा है तथा उसमें सुधार की आवश्यकता है। वस्तुत: मैं तो आज तीन प्रमुख मुद्दों पर चर्चा

करना चाहूँगा - पहला अब जबकि राष्ट्रपति ओबामा दुबारा चुनाव जीत गए हैं, भारत के लिए यह सही समय है कि वह दोहा दौर की वार्ता के विफल होने और विशेष रूप से विश्व व्यापार संगठन प्रणाली को विफल करने के उसके इरादों के संबंध में अमेरिका से बातचीत करे। आज जबकि अधिमान्य व्यापार करार ही व्यापार विवादों के निपटान का एक मात्र माध्यम बचे हैं, तो ऐसे में बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली की समाप्ति अथवा इसके प्रति अत्यधिक संवेदनशीलता से विश्व व्यापार संगठन की कानून बनाने (डंपिंग रोधी कानून आदि) तथा विवाद निपटान एजेंसी की भूमिका, जिसकी काफी प्रशंसा हो चुकी है, को खतरा उत्पन्न हो गया है। हमें इसके मायने भलीभाँति समझने होंगें तथा भारत को अपनी प्रमुख भूमिका निभाते हुए इन मुद्दों को पुरजोर तरीके से उठाना होगा तथा यह सुनिश्चित करना होगा कि दोहा दौर की वार्ता को जो ब्रेक ओबामा प्रशासन ने लगाया है, उससे वह विफल न हो।

दूसरा - मैं यहाँ यह उल्लेख करना चाहूँगा कि पहले ओबामा प्रशासन ने केवल व्यापार की बहुराष्ट्रीयता को ही नुकसान नहीं पहुँचाया है बल्कि एशिया क्षेत्र में यह जिस प्रकार की क्षेत्रीयता फैला रहा है वह भी इस क्षेत्र में व्यापार को बढ़ाने के बजाय उसे गर्त में ढकेलेगी। अंतर प्रशांत सहभागिता एशिया क्षेत्र को उसी प्रकार विभाजित कर देगीं जिस प्रकार अमेरिकी नीति ने दक्षिण अफ्रीका को विभाजित किया है। इससे पहले कि अमेरिका इसमें सफल हो जाए भारत (जो एक प्रमुख एशियाई शक्ति भी है) को

अपनी प्रभावी भूमिका के लिए तैयार हो जाना चाहिए। भारत को अपनी शक्ति और आकार को पहचानना चाहिए तथा इस मामले में मात्र मूकदर्शक नहीं बने रहना चाहिए जैसा कि उसने जी-20 के मामले में किया है। इस पर टिप्पणी करते हुए किसी ने कहा है कि भारत जी-20 का डिनर तो खाना चाहता है परंतु उसका मेन्यू तय करने में कोई भूमिका नहीं निभाना चाहता।

तीसरा और अंतिम मुद्दा यह है कि ओबामा प्रशासन और डेमोक्रेट्स ने सामान्यत: अपने पहले शासन के दौर से लेकर अब तक कभी भी 'आउटसोर्सिंग' का पक्ष नहीं लिया है और उनकी दृष्टि में आउटसोर्सिंग का तात्पर्य विशुद्ध रूप से 'भारत' से है न कि चीन से। भारत अगर यह समझता है कि यह कोई महत्त्वपूर्ण मुद्दा नहीं है अथवा यह केवल राजनैतिक मुद्दा है तो वह खुद भ्रम में है। नौकरियों का मुद्दा अमेरिका में अब एक प्रमुख विषय बन चुका है और कभी भी राजनेता इसे मुद्दा बना सकते हैं और भारत की स्थिति अजीब हो सकती है। आप इस बात को सहज ही समझ सकते हैं कि क्यों नव नाजियों द्वारा हाल ही में अमेरिका में सिखों पर आक्रमण किए गए? ऐसे आक्रमण हैसिदिक यहूदियों पर नहीं किए गए जब कि वे कहीं अधिक ओसामा बिन लादेन की तरह दिखते हैं। कारण स्पष्ट है - सिखों को अमेरिकी नौकरियाँ लेने का जिम्मेदार माना जाता है यहूदियों को नहीं; अब चूँकि चुनाव हो गए हैं

तो ऐसे में अब हम ओबामा प्रशासन से भारत के खर्च पर भारत के विरूद्ध इस राजनैतिक दुष्प्रचार को बंद करने और चार्ल्स शूमर तथा बारबरा बॉक्सर जैसे अपने डेमोक्रेट सांसदों को चुप करने अथवा इसकी प्रतिक्रिया झेलने के लिए कह सकते हैं। 'हम - हिंदी अमेरिकी भाई-भाई' युग में हैं क्योंकि दोनों देश प्राकृतिक रूप से दोस्त हैं किंतु इसका मतलब यह नहीं है कि हम अपनी आँखें और कान बंद रखें जैसा हमने 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' वाले दौर में किया था।

दोहा का अंत

वेजेज पर यूनियनों के 'व्यापार विरोधी' रूख को बदलने में ओबामा की असफलता की अधिकांश जिम्मेदारी वस्तुत: क्लिंटन प्रशासन पर है। राष्ट्रपति क्लिंटन द्वारा इसे जान-बूझकर छोड़ दिया गया था। जब क्लिंटन ने उरूग्वे दौर तथा नाफ्टा को पारित करने के लिए लड़ाई लड़ी थी तो उन्होंने यूनियनों को राजनैतिक रूप से परास्त कर दिया था किंतु वह उनके व्यापार विरोधी रूख को नहीं बदल पाए थे और अब जब यूनियनों के धन और उनके समर्थन से ओबामा और उनके डेमोक्रेट सहयोगियों को विजय प्राप्त हुई है और उनके साथी कांग्रेस में चुनकर आ गए हैं तो अब ओबामा और उनके प्रशासन के लिए उनके रूख को व्यापार-अनुकूल बनाना और भी कठिन कार्य हो गया है, और वे अब अपनी इस जिम्मेदारी से मुकर भी गए हैं।

[यह एक मजेदार तथ्य है कि अधिकांश लोग यह मानते हैं कि जॉर्ज डब्ल्यू. बुश की ईराक के खिलाफ लड़े गए लंबे युद्ध के परिणामों को भुगतने के लिए टैक्स न बढ़ाने संबंधी नीति का खामियाजा ओबामा प्रशासन को झेलना पड़ा। यह जान-बूझकर किया गया कृत्य था। इसलिए पहले ओबामा प्रशासन की असफलताओं की जिम्मेदारी बिल क्लिंटन और जॉर्ज डब्ल्यू. बुश दोनों पर कहीं ज्यादा है।]

वैसे राष्ट्रपति क्लिंटन कभी भी मुक्त व्यापार के समर्थक नहीं रहे। यहाँ तक कि हाल के चुनावों में भी जब वे ओबामा के प्रचारक के रूप में कार्य कर रहे थे तब भी नहीं। हालांकि कई अन्य विषयों पर वे काफी मुखर थे परंतु मुक्त व्यापार के संबंध में उन्होंने शायद ही कभी कुछ कहा हो। इस तथ्य का पता इस बात से ही चलता है कि वह व्हाइट हाउस के लिए हिलैरी क्लिंटन की दावेदारी के समर्थक थे। सुश्री क्लिंटन पहले चुनाव (2008) में, जिसमें वे ओबामा से हार गई थीं, व्यापार की प्रखर विरोधी थीं। उन्होंने शायद प्रोफेसर पॉल सैम्युअलसन के हालिया विचारों की गलत व्याख्या कर ली थी जिसमें 'संरक्षणवाद' के समर्थन को व्यापार उदारीकरण पर मोरेटोरियम की संज्ञा दी गई थी। इस सच से रू-ब-रू होते हुए कि व्यापार - समर्थक पक्ष रखने पर उन्हें दूसरे चुनाव के लिए डेमोक्रेट्स के समर्थन की कोई उम्मीद नहीं रखनी चाहिए, उन्होंने अपनी व्यापार विरोधी छवि को कभी नहीं बदला और इसी को ध्यान में रखते

हुए राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने भी जान-बूझकर मुक्त व्यापार का समर्थन नहीं किया।

इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रपति ओबामा ने 'दोहा' से दूर रहने की ही रणनीति बना ली। उन्होंने अपने प्रमुख नीतिगत भाषणों में भी 'दोहा' का कभी जिक्र नहीं आने दिया। इसी को ध्यान में रखते हुए मैंने 'दावोस' में मजाक में कहा था कि इस गलती (ओमीशन) की सबसे सरल व्याख्या यही है कि राष्ट्रपति ओबामा अमेरिका के कड़वे राजनैतिक युद्ध को शालीन बनाना चाहते थे और इसीलिए उन्होंने अंग्रेजी के इस चार वर्णीय शब्द का एक बार भी नाम नहीं लिया।

कम से कम दोहा चक्र के दसवें वर्ष में सभी राजनेता उसे अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाना चाहते थे। किन्तु विश्व के सभी राजनेताओं के आग्रह के बावजूद ओबामा प्रशासन दोहा चक्र को किनारे करने या यूं कहें उसे समाप्त करने के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध दिखा। मैं इसका प्रत्यक्षदर्शी हूँ - जब प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भारत के नए वाणिज्य मंत्री आनंद शर्मा को नए यू एस ट्रेजरी रॉन किर्क से मिलने भेजा तो दोनों ही काफी सहज और गर्मजोशी से भरे दिखे कम-से-कम उनके पूर्ववर्ती कमलनाथ तथा सूसन श्वैब के संबंधों से तो यह केमिस्ट्री काफी बेहतर थी। पर मुझे तब यह जानकर बहुत दुख हुआ कि जब श्री शर्मा तथा वाशिंग्टन में भारतीय राजदूत ने हमें बताया कि अमेरिका की दोहा में कोई रुचि नहीं है। इसकी पुष्टि स्पष्ट रूप से इस बात से तब हो गई जब भारतीय राजदूत द्वारा दोहा

वार्ता के बारे में वाणिज्य मंत्री आनंद शर्मा के संबोधन हेतु एक कार्यक्रम का आयोजन किया। इस कार्यक्रम में सभी महत्त्वपूर्ण देशों ने संयुक्त राष्ट्र में अपने दूत को भेजा था किंतु यू एस में अमेरिकी प्रतिनिधि सूसन राइस ने इसमें बहुत ही निम्नस्तरीय अधिकारी को भेजा था।

वस्तुत: दोहा वार्ता को आगे न बढ़ाने के बारे में अमेरिका इतना कटिबद्ध हो गया था कि यह अफवाह भी उड़ने लगी थी कि अमेरिका विश्व व्यापार संगठन के महासचिव श्री पास्कल लामी (जो दोहा वार्ता को अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाना चाहते थे) से इतना खफा हो गया था कि उनका कार्यकाल ही खतरे में आ गया था और उन्हें चेतावनी तक दे दी गई थी और यू एन महासचिव बॉतरस घाली से नाराज होकर ही अमेरिका ने उनके दूसरे कार्यकाल का समर्थन नहीं किया।

दोहा के विरूद्ध अमेरिकी दुष्प्रचार इस कदर बढ़ गया था कि वार्ता को पहले मिलने वाला मीडिया का सामान्य समर्थन भी अब नहीं मिल रहा था। इसमें सबसे अधिक चौंकानेवाला तो फाइनेंसियल टाइम्स का रूख था। पहले इसका भरपूर समर्थन करने के बाद इसने न केवल दोहा के बारे में आशंकाएं व्यक्त करनी शुरू कर दीं बल्कि इसका विरोध भी करने लगा। यह विरोध इस स्तर तक पहुँच गया कि इसके संपादकीय में भी दोहा को बंद करने संबंधी लेख छपने लगे। जिस प्रकार लीस्टर थ्यूरो ने यह घोषणा की थी कि गैट युग अब समाप्त हो चुका है इसी प्रकार इस प्रमुख अखबार ने भी छापना शुरू किया कि 'दोहा अब मृतप्राय' हो चुका

है। यह अखबार विश्व के अनेक प्रबुद्धजनों द्वारा पढ़ा जाता है तथा अधिकांश बुद्धिजीवी ऐसे क्षेत्रों में जिनमें वे निष्णात नहीं होते हैं, इस अखबार के आधार पर ही अपनी राय बनाते हैं। इसलिए हममें से अधिकांश लोगों ने यह कहना शुरू किया कि इस अखबार ने भी दोहा को बहुत जल्दबाजी में छोड़ दिया है जबकि विश्व के कई विद्वान इसे पूरा करने के पक्ष में थे।

किंतु अमेरिकी स्थिति भारत द्वारा दोहा पर की गई कार्रवाईयों अथवा न की गई कार्रवाईयों के लिए घातक साबित हुई। प्रमुख सरकारों ने भी इस दिशा में प्रयास किया तथा जर्मनी की चांसलर एंजिला मर्केल तथा यूनाइटेड किंगडम के प्रधानमंत्री कैमरून ने व्यापार संबंधी मसलों पर एक एक्सपर्ट ग्रुप का गठन करने का निर्णय लिया और इस विशेषज्ञ दल की सह अध्यक्षता करने के लिए उन्होंने मुझे तथा पीटर सदरलैंड से अनुरोध किया। वे इस बात के लिए भी उत्सुक थे कि भारत भी इस दल को सह-प्रायोजित करे और इसके लिए ब्रिटिश नौकरशाह, जिसने ब्रिटिश सरकार के लिए जी-20 बैठकों में शेरपा की भूमिका निभाई थी, ने अपने भारतीय काउंटर पार्ट से संपर्क साधा। किन्तु इस समूह की बैठक संबंधी भारतीय प्रायोजन ऐसे कुतर्कों के चलते खतरे में पड़ गया जिन्हें मैं आज भी मानने को तैयार नहीं हूँ। मेरा यह मानना है कि ऐसा इस वजह से नहीं हुआ कि हमारा प्रतिनिधि उन्हें अपने तर्कों से सहमत नहीं करा पाया बल्कि इसके पीछे कुछ और ही कहानी है। दरअसल इस प्रकार के समूह में शामिल

होने का मतलब है दोहा के लिए दबाव डालना जिसका अमेरिका पुरजोर विरोध कर रहा था और अमेरिकी दवाब के आगे भारत का झुकना एक रणनैतिक चिंता थी। अंतत: इस समूह को इंडोनेशिया तथा तुर्की ने सह-प्रायोजित किया और भारत दोहा के पक्ष में शामिल दलों के साथ आने से चूक गया। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि भारत सरकार ने अमेरिकी रूख भाँपकर ही दोहा को आगे बढ़ाने से रोक लिया।

II दोहा के बाद : आखिर क्या ?

कमजोर बहुपक्षीय व्यवस्था भारत के लिए चिंता का विषय है। इसलिए अब जबकि ओबामा पुन: जीतकर सत्ता में आ गए हैं, भारत को इस बात की पुरजोर कोशिश करनी चाहिए कि अमेरिका फिर से वार्ता के लिए वापस लौटे। किंतु अमेरिका बहुपक्षीयता के अपने ही बनाए जाल में उलझा गया है इसलिए ऐसी आशा करना कि नव-निर्वाचित राष्ट्रपति का अचानक हृदय परिवर्तन हो जाएगा, उतना आसान नहीं है।

इसलिए हमें इस समस्या को सुलझाने के लिए दूसरा रास्ता अपनाना चाहिए। संक्षेप में हमें अब यह प्रश्न पूछना चाहिए कि दोहा जैसे बहुपक्षीय वार्ता मंचों के समाप्त हो जाने से विश्व व्यापार संगठन तथा उसके सिद्धांतों

पर क्या दुष्प्रभाव पड़ेगा? और इस दुष्प्रभाव को कम करने के लिए हम क्या कर सकते हैं?

विश्व व्यापार संगठन एक तिपाए की तरह: इस प्रश्न को समझने के लिए हमें जानना होगा कि विश्व व्यापार संगठन एक तिपाए की तरह है जिसकी एक भूमिका है - बहुपक्षीय व्यापार उदारीकरण की (जैसे दोहा), दूसरी भूमिका है-कानून बनाने की शक्ति (एंटी डंपिंग कानून तथा सब्सिडी आदि जो बहुपक्षीय व्यापार वार्ताओं में चर्चा का मुद्दा होते हैं) और तीसरी भूमिका है - विवाद निपटान प्रणाली की जो कि इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

जब एक पाया कमजोर होता है या यूं कहें कि एक भूमिका कमजोर होती है या कमजोर कर दी जाती है जैसे कि दोहा, तो बहुपक्षीय व्यापार वार्ता के स्थान पर अधिमान्य व्यापार करार ही एक मात्र विकल्प बचते हैं तो इस प्रकार दूसरी भूमिका स्वत: ही कमजोर हो जाती है अर्थात कानून निर्माण स्वत: ही इन वरीय व्यापार करारों की ओर झुक जाता है और अब तीसरी भूमिका भी कमजोर हो जाती है अर्थात अधिकांश विवादों का निपटान द्विपक्षीय व्यापार निपटान प्रणालियों के माध्यम से ही होता है, जहाँ अमेरिका जैसी प्रभुत्वशाली ताकतें अपनी शक्ति व प्रभाव का इस्तेमाल कर निर्णयों को प्रभावित करती हैं और वहाँ ऐसे मुद्दों से प्रभावित अन्य किसी डब्ल्यूटीओ सदस्य की पहुँच नहीं होती है।

इसलिए भारत को इस बात के लिए दबाव डालना होगा कि अधिमान्य व्यापार करार (पीटीए) इस प्रकार तैयार किए जाएं कि वे दुष्प्रभावों से मुक्त हों तथा विश्व व्यापार संगठन की मूल भावना को सुरक्षित रखते हुए विकासशील देशों के हितों की रक्षा कर सकें।

भारत ने पहले ही भगवती-सदरलैंड आयोग को प्रायोजित करने का एक मौका गंवा दिया है। अब उसे दूसरा मौका नहीं खोना चाहिए तथा अपनी ओर से पहल कर प्रतिष्ठित व्यापार विशेषज्ञों और व्यापार प्रशासकों, जिनमें विश्व व्यापार संगठन के डॉ.सुपाचई पैनिचपकड़ी तथा अंकटाड शामिल हों, को मिलाकर एक विशेषज्ञ दल का गठन करना चाहिए, जो इन सभी मुद्दों पर गहन विचार करें ताकि मात्र उपेक्षा अथवा अनजाने में बहुपक्षीय व्यापार वार्ताओं (एम टी एन) के अंत, इस प्रकार न हों जो विश्व व्यापार संगठन की अन्य भूमिकाओं को भी प्रभावित करे।

बहुलवाद : बहुपक्षीय व्यापार वार्ताओं के अवसान का एक और दुष्परिणाम हमारे सामने उपस्थित होगा और वह होगा बहुलवाद का पुनर्जीवन - अर्थात बहुपक्षीय व्यापार वार्ताओं अथवा अधिमान्य व्यापार करारों के बजाए उदारीकरण पर सभी सदस्यों के बजाए कम सदस्यों की सहमति से निर्णय लेना - इसे कभी-कभी 'क्षेत्रीय वार्ताएं' भी कहा जाता है।

एक सशक्त लॉबी सेवाओं में व्यापार उदारीकरण को बहुलवाद के जरिए ही चाहती है तथा इसे डब्ल्यू टी ओ में जोड़ना चाहती है। किंतु इन

क्षेत्रीय करारों के केवल वित्तीय सेवाओं तक ही सीमित रहने की संभावना है जो बैंकों तथा वित्तीय संस्थाओं की सशक्त लॉबीइंग को प्रदर्शित करता है।

यद्यपि यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि 2008 के संकट के बाद आज तक गैर-सरकारी संगठनों तथा विनियामकों की नाराजगी के बगैर इसे नहीं किया जा सका है। भारत को इस संबंध में अपनी भूमिका निभानी चाहिए तथा अपनी स्थिति यह स्पष्ट करनी चाहिए अन्यथा इसका तात्पर्य होगा पीटर्सन इंस्टीट्यूट जैसे विचारकों के और करीब जाना जो वाशिंग्टन के हितों के लिए लॉबीइंग करते हैं तथा कांग्रेस प्रतिनिधियों के करीब जाना जो इनके हितों को उठाते हैं।

इसके अलावा, अब यह स्पष्ट हो चुका है कि सीमापार सेवा संव्यवहारों में चिकित्सा सेवाओं को भी शामिल किया जाना चाहिए जिसमें भारत के लिए अच्छे अवसर हैं। मैंने खुद सेवाओं पर गैट करार से पहले इस बात को उठाया था कि सेवा करारों को चार वर्गों में बांटा जाना चाहिए : पहला जहाँ आपूर्तिकर्ता तथा प्रयोक्ता एक दूसरे के भौतिक संपर्क में नहीं आते, और दूसरा जहाँ वे एक दूसरे के भौतिक संपर्क में आते हैं जैसे चिकित्सक का रोगी के पास जाना, रोगी का चिकित्सक के पास जाना तथा विदेशों में ऐसे अस्पताल आदि जो न्यूनतम निवेश से स्थापित किए गए हैं। ऐसे क्षेत्रों को निवेश के लिए खोलना भारत के लिए लाभदायक तो होगा ही साथ ही चिकित्सा खर्च में भी भारी कटौती की जा सकेगी तथा चिकित्सा

कर्मियों की उपलब्धता बढ़ाई जा सकेगी जिससे 'ओबामा केयर' जैसे सुधार संभव हो सकेंगें।

हम ओबामा प्रशासन से एक संयुक्त विशेषज्ञ दल के गठन के लिए भी कह सकते हैं जो इन सभी मुद्दों पर विचार करेगा न कि राजनेता अथवा ब्यूरोक्रेट्स - इस दल को हम भविष्य में अन्य सेवा क्षेत्रों पर भी विचार करने के लिए कह सकते हैं तथा भविष्य में एक सेक्टोरेल के रूप में विकसित कर सकते हैं।

III.आउटसोर्सिंग पर ओबामा का कुतर्क : भारत की चिंता और उसे क्या करना चाहिए।

अंतत: अब मैं ओबामा प्रशासन के आउटसोर्सिंग के विरूद्ध निरन्तर अनर्गल प्रलाप पर आता हूँ। दरअसल राष्ट्रपति के राजनीतिक सलाहकारों ने यह सोचा था कि इसके जरिए वे आसानी से मिट रोमनी को कड़ी टक्कर दे पाएंगे और साथ ही भारत का कद छोटा कर देंगे। वैसे आप यदि अमेरिका में किसी भी आदमी से आउटसोर्सिंग के बारे में पूछेंगें तो आपको एक ही जवाब मिलेगा - आउटसोर्सिंग मतलब-भारत। जबकि एक्सचेंज दरों में छेड़छाड़ तथा कॉपीराइट तथा पेटेंट चोरी का तात्पर्य है-चीन। उनके इन राजनैतिक सलाहकारों तथा डेमोक्रेटिक सीनेटर्स जैसे शूमर, पेलोसी तथा बॉक्सर का इरादा इससे अधिक कुछ भी नहीं था।

अमेरिका में रह रहे भारतीय इन वास्तविकताओं से अनभिज्ञ हैं क्योंकि अभी वे वहाँ मजे में हैं और इनमें से काफी तो आलसी भी हो गए हैं। कई तो शक्ति केंद्रों के साथ फोटो खिंचवाकर भारत के साथ व्यापार भी कर लेंगें परंतु भारत सरकार को ऐसे महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर चुप नहीं रहना चाहिए।

अब यह सही समय है जब हमारे प्रधानमंत्री को ओबामा को बता देना चाहिए कि राजनीति क्या है? यह हम भी समझते हैं कि राजनीति में कभी-कभी अनर्गल आरोप-प्रत्यारोप भी होते हैं परंतु अब चूंकि चुनाव समाप्त हो गए हैं तो ओबामा तथा उनके करीबी सहयोगियों को अपने व्यवहार में बदलाव लाना चाहिए। अन्यथा जैसा कि चीन द्वारा किया जाता है, हमें भी अपनी बात कहना आता है। मैं पुन: इस बात को दुहराना चाहूँगा कि इस अनर्गल दुष्प्रचार को बंद करने के लिए भारत को एक उच्च स्तरीय विशेषज्ञ दल का गठन करना चाहिए। इस दल में दोनों तरफ के विश्व स्तरीय विद्वान हो सकते हैं, जो इस आउटसोर्सिंग संबंधी मुद्दे पर विचार करेंगें तथा इसका समुचित समाधान देंगें और संभवत: तभी यह अनर्गल दुष्प्रचार समाप्त होगा।

अन्य विद्वानों के साथ-साथ मैंने भी आउटसोर्सिंग से संबंधित शिकायतों तथा भ्रांतियों पर लेख लिखे हैं। इस प्रकार के लेख इंटरनेट पर सुलभता से उपलब्ध हैं। जिनके जरिए सरकार यदि चाहे तो सत्यता का पता लगा

सकती है। मेरा विचार है कि भारत सरकार को अब इस संबंध में स्वयं तर्क पेश करने के बजाए प्रख्यात विशेषज्ञों के एक दल का गठन कर दूसरे पक्ष के विशेषज्ञों से ही इस संबंध में संवाद करने पर विचार करना चाहिए।

IV. अधिमान्य व्यापार करार (पीटीए) सहभागिता - अमेरिका अब ट्रांस - पैसिफिक के समान इनकी जोरदार वकालत क्यों कर रहा है

जिस प्रकार अमेरिका की कई लॉबियाँ अधिमान्य व्यापार करारों में अपने व्यापार हितों, जिसे मैं व्यापार रहित हित कहना चाहूँगा, को साधने में जुटी हैं और जिस प्रकार अमेरिका इनका पक्ष लेने के लिए इन करारों में अपनी पैठ बना रहा है, उसका हम सबको विरोध करना चाहिए।

भारत सरकार, राष्ट्रपति लूला, चीन तथा अन्य अग्रणी देश इस बात को मानते हैं कि इस प्रकार की मांगें अधिमान्य व्यापार करारों का माहौल खराब करती हैं तथा वे भविष्य में विश्व व्यापार प्रणाली को बड़ा नुकसान पहुँचाने वाली हैं।

इसीलिए श्रम मानक अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन से संबंधित हैं तथा व्यापार करारों से संबंधित नहीं हैं। इसके पीछे निहित भावना को मेरे तथा अन्य कई विद्वान साथियों द्वारा विस्तार में बताया गया है। मेरा यह मानना है कि

सर्वोत्तम बौद्धिक संपदा संरक्षण उपाय भी आई पी लॉबी का मुकाबला नहीं कर सकते हैं इसीलिए यू एस टी आर की आवश्यकता है।

मैंने 2009 में लिखी गई अपनी पुस्तक ''टर्माइट्स इन दि ट्रेडिंग सिस्टम : हाउ प्रिफरेंशियल एग्रीमेंट्स अंडरमाइन फ्री ट्रेड (ऑक्सफोर्ड)'' में इस बात को पूरी तरह से उठाया है कि किस प्रकार 'ट्रेड गेम' अब 'शेल गेम' में बदल गया है।

भारत हमेशा अधिमान्य व्यापार करारों में लॉबीकर्ताओं से निर्देशित मांगों को शामिल करने का भरपूर विरोध करता रहा है और हमारे साथ ही यूरोपीय संघ भी मुक्त व्यापार करारों में इन मांगों को शामिल न करने तथा इन करारों को विशुद्ध व्यापार उदारीकरण मुद्दों पर ही केन्द्रित करने पर जोर दे रहा है।

किंतु हमें थोड़ा और आग्रही (प्रोएक्टिव) होना पड़ेगा। हमें अपनी बात कहने के लिए समान विचार रखने वाले देशों, जहाँ ऐसे करार केवल व्यापार मुद्दों पर ही केन्द्रित होते हैं, को साथ लेकर एक नए ढंग से अपनी बात रखनी होगी। इस प्रकार का एक फोरम एशियान +6 का हो सकता है इसमें अमेरिका को तभी शामिल होने की इजाजत दी जाए जब उसके द्वारा इसमें कोई विषयेतर/असंगति अथवा गैर-व्यापार विषय शामिल न करने की गारंटी दी जाए। अमेरिका द्वारा जिन टी पी पी की वकालत की जा रही है वे इसके बिल्कुल विपरीत हैं और इस प्रकार इस क्षेत्र में कम से कम दो प्रकार की प्रतिस्पर्धी विचारधाराएं होंगी।

मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि टी पी पी के सदस्यों को भी पहल कर इसमें बदलाव लाना चाहिए ताकि इसमें नए देशों, जो इस प्रकार शर्तों को जोड़ने की इच्छा न रखते हों, को भी जोड़ा जा सके। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है - यदि मैं गोल्फ क्लब ज्वाइन करना चाहता हूँ तो मुझे कम से कम यह तो पता होना चाहिए कि गेंद को गोल्फ होल में कैसे डालते हैं। पर सदस्य यह चाहते हैं कि गेंद को गोल्फ होल में डालने के बजाय मैं रविवार को चर्च जाऊं तथा मैड्रिगल्स गाऊं। यदि हमने देशों को मात्र व्यापार उदारीकरण के मुद्दों पर ही टी पी पी ज्वाइन करने दिया तो यह सच्चे अर्थों में क्षेत्रीयता को खोलना होगा।

यदि भारत सरकार कम से कम व्यापार मुद्दे पर अमेरिका को नाराज न करने संबंधी अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने में कामयाब हो सकी तथा ऊपर दिए गए सुझावों में से सभी अथवा कुछ को कार्यान्वित कर सकी तो किसी के विचारों का अनुवर्तन करने के बजाय हम अपनी बात को बेहतर ढंग से कह पाएंगें तथा अपेक्षित सम्मान हासिल कर पाएंगें।

प्रोफेसर जगदीश भगवती कोलम्बिया विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र तथा विधि के प्रोफेसर एवं विदेशी संबंध परिषद में अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र के वरिष्ठ सदस्य हैं। प्रोफेसर जगदीश भगवती 1991 से 1993 की अवधि में गैट के महानिदेशक के आर्थिक नीतियों के सलाहकार; वैश्वीकरण पर संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेष सलाहकार तथा विश्व व्यापार संगठन के बाह्य सलाहकार रहे हैं। आप विश्व व्यापार संगठन के भविष्य पर विश्व व्यापार संगठन के महानिदेशक द्वारा गठित विशेष सलाहकार दल के सदस्य रहे हैं, साथ ही संयुक्त राष्ट्र महासचिव कोफी अन्नान द्वारा अफ्रीका में नेपाड प्रक्रिया पर गठित सलाहकार समिति के सदस्य रहे हैं। आप अंकटाड के भविष्य पर अध्यक्ष फेरनांडो हनरिफ कार्डोसो की अध्यक्षता में गठित विशिष्ट दल के भी सदस्य रहे हैं। वर्तमान में आप डॉ.सुपाचई द्वारा फिनलैंड के राष्ट्रपति हलोनेन की अध्यक्षता में गठित विशिष्ट दल के सह-अध्यक्ष हैं। आप भारत के वर्तमान प्रधानमंत्री डॉ.मनमोहन सिंह जो 1990 में भारत के तत्कालीन वित्तमंत्री थे, के आर्थिक सुधार कार्यक्रम के सलाहकार भी रह चुके हैं। प्रोफेसर भगवती को अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र में अपनी पीढ़ी का सर्वाधिक सृजनशील सिद्धांतकार

माना जाता है और वे मुक्त व्यापार की वार्ताओं/बहसों/संघर्षों में अग्रणी स्थान रखते हैं। उनकी हालिया पुस्तक 'टर्माइट्स इन दि ट्रेडिंग सिस्टम (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2008)' में अधिमान्य व्यापार करारों के दुष्प्रभावों पर बहस की गई है। उनकी इससे पहले की पुस्तक 'इन डिफेंस ऑफ़ ग्लोबलाइजेशन (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2004)' को पूरे विश्व में काफी प्रशंसा मिली है। एम आई टी प्रेस द्वारा उनके लेखों के पाँच खंडों तथा नीतिगत निबंधों के दो खंडों को प्रकाशित किया गया है। आपको 6 फेस्टक्रिफ्ट्स पुरस्कारों सहित कई अन्य पुरस्कार व 17 मानद डिग्रियाँ प्राप्त करने का गौरव हासिल है। आपको भारत सरकार द्वारा पद्म विभूषण तथा जापान द्वारा ऑर्डर ऑफ़ दि राइजिंग सन, गोल्ड व सिल्वर पुरस्कारों से भी नवाजा गया है।

भारत के मूल निवासी प्रोफेसर भगवती ने 1956 में कैम्ब्रीज यूनिवर्सिटी से अर्थशास्त्र ट्राइपोज में प्रथम श्रेणी से ग्रेज्यूएशन की डिग्री हासिल की। तत्पश्चात एम आई टी तथा ऑक्सफोर्ड में अपनी पढ़ाई जारी रखने के बाद आप 1961 में इंडियन स्टेटिस्टीकल इंस्टीट्यूट में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर पद पर भारत वापस आए। उसके बाद आप दिल्ली स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स में इंटरनेशनल ट्रेड के प्रोफेसर नियुक्त हुए। आपने 1968 में पुन: एम आई टी ज्वाइन कर लिया तथा वहाँ बारह वर्ष तक रहने के बाद आपने फोर्ड इंटरनेशनल प्रोफेसर ऑफ़ इकोनॉमिक्स के पद पर कोलम्बिया विश्वविद्यालय ज्वाइन कर लिया।

अब तक प्रकाशित किए गए वार्षिक व्याख्यानों की सूची

1986 - **डॉ. दीपक नय्यर**
सेवाओं का अंतरराष्ट्रीय व्यापार - विकासशील देशों के लिए निहितार्थ

1987 - **डॉ. पार्थ दासगुप्त**
अर्थव्यवस्थाओं का संसाधन आधार

1988 - **डॉ. आबिद हुसैन**
भारतीय आयोजना में विदेश व्यापार नीति

1989 - **एम. नरसिंहम**
वित्तीय बाज़ारों का भूमंडलीकरण और भारत

1990 - **सिडनी डेल**
1990 के दशक के कार्यों के लिए विश्व बैंक में सुधार करना

1991 - **प्रणव वर्धन**
सरकार और गतिशील तुलनात्मक लाभ

1992 - **डॉ. (सुश्री) इशर जज अहलूवालिया**
भारत की व्यापार नीति और औद्योगीकरण

1993 - **लार्ड मेघनाद देसाई**
पूँजीवाद, समाजवाद और भारतीय अर्थव्यवस्था

1994 - **डॉ. विजय जोशी**
भारत की समष्टिगत आर्थिक नीति और उसके आर्थिक सुधार

1995 - **डॉ. स्टेनले फिशर**
आर्थिक सुधार और गरीब

1996 - **रजत गुप्ता**
उत्पादकता के नए शिखर पर पहुँचना

1997 - **डॉ. पेड्रो आस्पे**
निजीकरण और भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ-मेक्सिको के अनुभव

1998 - **चार्ल्स एच. डाल्लारा**
एशियाई मुद्रा संकट के अनुवर्ती उभरते हुए बाज़ारों की संभावना और भारत

1999 - **डॉ. सी. फ्रेड बर्गस्टन**
भारत और वैश्विक व्यापार प्रणाली

2000 - **डॉ. इसुके सकाकीबारा**
21वीं शताब्दी में एशिया -भारत और जापान की भूमिका

2001 - **प्रोफेसर निकोलस स्टर्न**
भारत में निवेश, विकास तथा गरीबी में कमी करने के लिए वातावरण बनाना

2002 - **डॉ. पर पिंस्ट्रुप-एंडरसन**
वैश्विक जगत में भारतीय कृषि

2003 - **जेम्स बी. बोल्जर, ओ एन ज़ेड**
कृषि में अंतरराष्ट्रीय व्यापार : उभरते परिदृश्य

2004 - **डॉ. एडुआर्डो अनिनात**
विकासशील देशों के परिदृश्य में व्यापार और वित्तीय क्षेत्र में भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ

2005 - **रूबिंस रिकोपेरो**
व्यापार और विकास : विकासशील देशों के लिए चुनौतियाँ

2006 - **सर सुमा चक्रबर्ती**
व्यापार और विकास में राष्ट्र की भूमिका

2007 - **डॉ. डेविड ह्यूम**
समावेशी वैश्वीकरण : चिरकालिक गरीबी को दूर करना

2008 - **श्री केमल दर्विश**
विश्व अर्थव्यवस्था की नई संरचना का परिदृश्य

2009 - **श्री जस्टीन यिफु लिन**
कींस के अर्थशास्त्र से परे-विकास के प्रोत्साहन

2010 - **डॉ. सुपाचई पैनिचपाकड़ी**
आर्थिक अभिशासन का पुनर्निर्माण :
संपोषी वृद्धि तथा विकास का एजेंडा

2011 - **प्रो. यु यांगडिंग**
चीन की अर्थव्यवस्था का पुनर्संतुलन

"निर्धारित लक्ष्य के साथ विदेश उन्मुख कंपनियों के अंतरराष्ट्रीयकरण प्रयासों में अभिवृद्धि करने के लिए उन्हें उद्दिष्ट उत्पादों और सेवाओं की व्यापक श्रेणी प्रदान करके उनके साथ वाणिज्यिक रूप में व्यवहार्य संबंध विकसित करना है।"

एक्ज़िम बैंक की दृष्टि